Toppersnotes

Unleash the topper in you

EMRS (PGT)

हिन्दी

एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय

भाग – 2

SIERRA INNOVATIONS

विषय सूची

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
	खंड क	
1.	**हिंदी साहित्य**	**1**
	➢ जयशंकर प्रसाद (व्याख्या भाग)	1
	➢ घनानंद (व्याख्या भाग)	3
	➢ सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अजेय' (व्याख्या भाग)	5
	➢ महादेवी वर्मा (व्याख्या भाग)	7
	➢ सुमित्रानन्दन पन्त (व्याख्या भाग)	9
	➢ सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (व्याख्या भाग)	12
	➢ भवानी प्रसाद मिश्र (व्याख्या भाग)	14
	➢ विद्यापति (व्याख्या भाग)	16
	➢ अमीर खुसरो (व्याख्या भाग)	18
	➢ गोस्वामी तुलसीदास (व्याख्या भाग)	22
	➢ कबीरदास (व्याख्या भाग)	25
	➢ मलिक मोहम्मद जायसी (व्याख्या भाग)	27
	➢ बिहारीलाल (व्याख्या भाग)	29
	➢ गजानन माधव मुक्तिबोध (व्याख्या भाग)	31
	➢ रामधारी सिंह 'दिनकर'	33
	➢ आर्य तथा मातृभूमि व्याख्या भाग	37
	➢ रसखान	39
	➢ मीराबाई: पद्यांश (व्याख्या भाग)	41
	➢ हरिवंश राय बच्चन:- (पथ की पहचान)	43
	➢ केदारनाथ सिंह	48
2.	**निम्नलिखित गद्य लेखकों की प्रसिद्ध रचनाएँ**	**51**
	➢ फणीश्वर नाथ रेणु	53
	➢ भीष्म साहनी	55
	➢ निर्मल वर्मा	56
	➢ पाजेब - जैनेन्द्र (व्याख्या भाग)	58
	➢ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (व्याख्या भाग)	60
	➢ मित्रता - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (व्याख्या भाग)	62
	➢ अशोक के फूल- हजारी प्रसाद द्विवेदी (व्याख्या भाग)	64
3.	**हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवियों एवं लेखकों के जीवन-परिचय, साहित्यिक रचनाएँ एवं भाषाशैली**	70

खंड ख		
4.	व्याकरण एवं रचना	116
5.	पर्यायवाची शब्द, विलोम शब्द, अनेकार्थक शब्द, समानोच्चारित शब्द (युग्म शब्द), वाक्यांश के लिए एक शब्द	120
6.	वाक्यांश के लिए एक सार्थक शब्द	142
7.	समास	156
8.	उपसर्ग	172
9.	प्रत्यय	179
10.	पद-विचार	191
11.	वाक्य-विचार	196

1 CHAPTER हिंदी साहित्य

जयशंकर प्रसाद (व्याख्या भाग)

आँसू

1. इस करुणा ____ असीम गरजती?

संदर्भ - उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ छायावाद के उन्नायक प्रतिष्ठापरक व प्रतिनिधि कवि कविवर जयशंकर प्रसाद की मुक्तक काव्य रचना 'आँसू' से अवतरित है।

प्रसंग - इन पंक्तियों में कवि स्वयं की विरह व्यथा का वर्णन करता है। कवि के अन्तर्मन में विरह का रागालाप हो रहा है तथा कवि के आर्त स्वरों से उसकी वेदना की अभिव्यक्ति भी हो रही है।

व्याख्या - कवि जयशंकर प्रसाद अपनी वियोगजन्य रचना 'आँसू' के माध्यम से अपनी विरहानुभूति का प्रदर्शन करते हैं। करुणा से आप्लावित हृदय में विकलता का भी समावेश हो गया है। करुणा जो स्वयं वेदना को जन्म देती है यदि उसमें व्याकुलता का प्रवेश हो जाता है तो हृदय की तड़प अधिकाधिक हो जाती है। यही करुणाजन्य हृदय में अब विकल-रागिनी को सुनने के लिए विवश है। वह रागिनी कहीं अन्यत्र स्थान से न आकर स्वयं कवि के आर्तपुकार या हाहाकार के स्वरों से ही अभिव्यंजित होती है। यही हाहाकार द्वारा निर्मित रागिनी आज कवि के हृदय में घोर पीड़ा उत्पन्न कर रही है। इस असीम वेदना का गर्जन कवि को अति व्याकुल कर देने वाला है।

Unleash the topper in you

विशेष -

- **रस** - करुण
- **छन्द** - वीर छन्द
- **अलंकार** - ('करुणा कलित' अनुप्रास, वेदना असीम गरजती - मानवीकरण)
- **भाषा** - खड़ी बोली
- **शब्दशक्ति** - लक्षणा
- **काव्यगुण** - माधुर्य।

टिप्पणी - कवि निराला तो जयशंकर प्रसाद की करुणा जो पत्नी जन्य करुणा है, उसे अपनी पुत्री सरोज के निधन पर सरोजस्मृति में इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

- दु:ख ही जीवन की कथा रही क्या कहूँ आज जो नहीं कही !
- यह करुणा प्रसाद के हृदय में कामायनी के श्रद्धा सर्ग में व्यक्त होती है -
- किन्तु जीवन कितना निरुपाय, लिया है देख नहीं सन्देह, निराशा है, जिसका परिणाम, सफलता का वह कल्पित गेह।

2. मानस सागर .... विस्मृत बीती बातें?

संदर्भ - पूर्ववत्।

प्रसंग - कवि प्रसाद जी इन पंक्तियों में अपनी प्रिया की मिलन- बेला की स्मृतियों का स्मरण करके पूर्व की घड़ियों को बिसूरते हैं।

व्याख्या - प्रेमी के मन में भूली-बिसरी बातों की स्मृति जाग उठी है और यह स्मृति कवि के मानस के परदे पर बराबर धीरे-धीरे टकरा रही है। प्रथम पंक्ति में कवि अपने से प्रश्न करते हैं कि मानस- सागर के तट पर भाव की लहरें क्यों टकरा रही हैं? लोल शब्द से यह प्रकट होता है कि स्मृतियाँ एक के बाद एक बड़ी शीघ्रता से उठ रहीं हैं और मन की भित्ति (दीवाल) पर टकरा रहीं हैं, जिस प्रकार लहरें तट से टकराती हैं। स्मृतियों की लहरों का आघात भी कवि को मधुर प्रतीत होता है। तभी उन लहरों में कल-कलं ध्वनि होती है जो कलरव और अतीत (कल) की अभिव्यंजना करती है। इस कल-कल ध्वनि से माधुर्य भाव भी व्यंजित होता है कि प्रेयसी प्रेमी को अपने प्रेम भाव से पूर्व में आर्द करती रही है।

<u>विशेष -</u>

- **रस** - करुण
- **छन्द** - वीर
- **अलंकार** - (मानस- सागर में, रूपक 'कल-कल में, श्लेष और ध्वन्यार्थ व्यंजना)
- **भाषा** - खड़ी बोली
- **काव्यगुण** - माधुर्य
- **शब्द शक्ति** - लक्षणा।

3. आती है शून्य .... देती फेरी?

संदर्भ - पूर्ववत्।

प्रसंग - कवि अपनी विरह वेदना का एकाकी रुदन करता है। वह अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति अपनी दिवंगता प्रियतमा को प्रेषित करने हेतु शून्य क्षितिज में पुकार लगाता है, किन्तु उसकी पुकार वापस उसी के पास आ जाती है, इससे कवि अति विचलित व पागल सा हो जाता है।

व्याख्या - कवि की स्मृति - वेदना हाहाकार के स्वरों में मुखरित तो होती है, किन्तु यह करुण चीत्कार उन्हीं तक मँडरा कर रह जाती है, जिसके प्रति वह उन्मुख होता है उस तक वह हाहाकार पहुँच नहीं पाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का प्रिय, जिसके साथ उसने प्रेम का मादक प्याला पान किया है, वह इस लोक में अब नहीं है। प्रिय की रिक्तता कवि को व्यथित कर देती है कि वह अपने प्रिय विरह में अरण्यरोदन करता फिरता है। यह रोदन उसका बाहर प्रकट होकर उसकी आन्तरिक अवस्था को सम्पूर्ण संसार और आकाश तक में भर देता है, परन्तु उसका कोई प्रत्युत्तर कवि को नहीं मिलता। कवि अपने करुण आलाप को स्वयमेव सुनता है। कवि की आँसुओं के साथ आँसू बहाने वाला उसे और कोई नहीं दिखायी देता। इसी निराशा के भाव से वह पूछता है कि उस शून्यः क्षितिज से मेरी प्रतिध्वनि क्यों लौट आती है? कवि का यह एकाकी रुदन पागल का प्रलाप प्रतीत होता है, किन्तु इसमें प्रेम की पराकाष्ठा तो विद्यमान है, इसमें तनिक सन्देह नहीं है।

<u>विशेष -</u>

- **रस** - करुण
- **छन्द** - वीर
- **अलंकार** - रुपक
- **भाषा** - खड़ी बोली
- **शब्द शक्ति** - लक्षणा
- **काव्यगुण** - माधुर्य।

घनानंद (व्याख्या भाग)

सुजानहित

(1)

रूप निधान सुजान सखी जब तैं इन नैनानि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचंभौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाठ उघारे।
टारैं रैं नहीं तारे कहूं सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥

सन्दर्भ - उपरोक्त अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'हिन्दी काव्य' के घनानंद ग्रंथावली के 'सुजान हित' से लिया गया है।

प्रसंग - घनानंद रचित सुजानहित नामक ग्रंथ के आरम्भिक भाग से लिया गया है। इस सवैये में कवि नायक को पहली बार देखने पर नायिका के हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका वर्णन कर रहा है। नायक या कृष्ण के सौन्दर्य का जो प्रभाव नायिका या गोपी पर पड़ा, उसका वर्णन करते हुए वह सखी से कहती हैं।

व्याख्या - हे सखि ! जब मैंने अपने नेत्रों से सौन्दर्य और रूप की राशि वाले, आकर्षक व्यक्तित्व वाले चतुर कृष्ण को देखा है, उनके सौन्दर्य की झलक मात्र पायी है, तब से मेरी मनोदशा बड़ी विचित्र हो : गयी है। उनका सौंदर्य देखकर मेरे मन में इतना प्रेम उपजा है, कि मेरी हालत अजीब हो गई है। उन रूप-सौन्दर्य देखते ही मेरी आँखे विस्मय मुग्ध हो उठीं, मेरा हृदय प्रेम में डूब गया और प्रेम की अधिकता के कारण मैं सारी लज्जा, सारा संकोच, मान-मर्यादा, परिवार की कुल-कानि का ध्यान छोड़कर, समाज की चिंता त्यागकर उनको देखती रह गई। छोटेबड़े पास-पड़ोस, घर वालों की चिंता किए बिना, शर्म-हया त्याग बैठी और ऐसा आचरण कर बैठी, जो कुल-वधू को शोभा नहीं देता, जिससे जग हँसाई होती है, बदनामी होती है। कवि घनानंद कहते हैं, कि जब से उस प्रिया के दर्शन किए हैं, उनकी सुंदरता, मोहक व्यक्तित्व और चतुर आचरण को देख, मैं प्रेम में इतनी डूब गई हूँ कि एक पल भी आँखे बंद नहीं हो पाती हैं। मेरे नेत्रों के पलक सदा खुले रहते हैं क्योंकि उन्हें देखते रहने की लालसा तीव्र से तीव्रतर होती रहती है। मैं नहीं चाहती कि वह मोहिनी मूरत साँवली सूरत एक पल के लिए भी नेत्रों से ओझल हो। अतः पलक झपकाना भी भूल गयी हूँ और निरंतर टकटकी लगाकर उसी ओर देखती रहती हूँ। उनका मनमोहक रूप विशेषतः उनकी जादू भरी, प्रेम भरी चितवन और लुभाने वाले नेत्र इतने आकर्षक हैं, कि लाख प्रयत्न करने पर भी मैं अपने नेत्रों को उनकी ओर से हटा नहीं पाती। भरसक चेष्टा करती हूँ। कुटुंब और जाति की मर्यादा का ध्यान कर उधर से अपना ध्यान और नेत्र हटाना चाहती हूँ पर न ध्यान हटता है और न आँखे उधर की ओर देखना बंद करती हैं। इस तरह प्रिये के रूप और मोहक व्यक्तित्व के कारण मेरे हृदय में प्रेम का जो ज्वार उमड़ा है, उसने मेरी दशा अत्यंत विचित्र बना दी है। मैं पूरी तरह उनपर आसक्त हो गयी हूँ और अब मुझे कोई नहीं रोक सकता।

विशेष - (i) घनानंद की कविता में सुजान शब्द का प्रयोग चतुर कृष्ण, प्रेमी नायिका और उस सुजान नामक वेश्या के लिए हुआ है जिसने घनानंद के साथ बेवफाई की और जिसके कारण वह प्रेम की पीर में इतना डूब गए और ऐसा काव्य लिखा जिसे 'प्रेम की पीर का काव्य' कहा गया है।

(2)

हीन भाँ जल मीन अधीन कहा कहु मो अकुलानि समानै।
मीर सनेही कों लाय निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समझे जड़, मीत के पानि परे कों प्रमानै।
या मन की जु दशा घनआनंद जीवन की जीवनि जान ही जानै।।

सन्दर्भ - पूर्ववत्।

प्रसंग - स्वभाव से प्रेमी, भावुक एवं प्रेम की पीर के कवि कहे जाने वाले घनानंद के 'सुजानहित' से उद्धृत इस छंद में कवि ने निष्ठुर प्रियतम की कठोरता और उसके कठोर, निर्मोही स्वभाव के कारण दुःखी और विरह - संतप्प नायिका की दारूण व्यथा का चित्र अंकित करते हुए उसकी वेदना को स्वर, स्वरूप और आकार देने का स्तुत्य प्रयास करते हैं। अपनी सखी से अपनी अंतर्व्यथा बताते हुए नायिक कहती हैं-

व्याख्या - हे सखी! जल से बिछुड़ने पर मछली बहुत व्याकुल होती है, उसकी पीड़ा निरंतर बढ़ती जाती है और अंत में वह मर जाती है। मेरी दशा भी कुछ-कुछ वैसी ही है बल्कि उससे भी अधिक दयनीय और दारूण है। प्रिय से बिछड़ने पर मेरे नेत्र भी अत्यंत त्रस्त हैं, संतृप्त हैं, व्याकुल हैं। मुझे लगता है, कि मेरी पीड़ा मछली की पीड़ा से भी अधिक तीव्र और दारूण है। मछली तो जल से वियुक्त होकर प्राण त्याग देती है, पीड़ा से छुटकारा पा लेती है, यद्यपि उसके इस कार्य से जल को कलंक लगता है, उसे निर्मोही एवं कठोर कहा जाता है। मैं तो मर भी नहीं सकती क्योंकि ऐसा करने से मेरे प्रिय को कुलंक लगेगा, संसार उसकी निष्ठुरता और विश्वासघात के लिए भला-बुरा कहेगा और मैं नहीं चाहती कि मेरे प्रिय को कोई अपशब्द कहे, उसे लांछन लगाए। फिर मछली का प्रिय जल लो जड़ है, अचेतन है और यदि वह प्रीति की रीति नहीं निभाता, कठोर आचरण करता है, अपने प्रेमी मीन के प्राण त्याग के लिए उत्तरदायी होता है तो उसका अपराध यह कहकर कि वह जड़ है, अचेतन है, क्षम्य हो सकता है, परन्तु मेरा प्रियतम तो जड़ नहीं है, वह तो सचेतन जीव है। अतः यदि वह निष्ठुरता का आचरण करता है और उसके कारण मैं प्राण त्याग देती हूँ तो उसे कोई क्षमा नहीं करेगा, उसका अपराध अक्षम्य समझा जाएगा और वह बदनाम होगा और मैं स्वयं कष्ट पाकर भी यह सहन नहीं कर सकती कि मेरे प्रिय पर कोई अँगुली उठाए, उसको कटु शब्द कहे। घोर दुःख में प्राण त्यागना कोई साहस का कार्य नहीं है, वह तो पलायनवाद है, मरने वाले की कायरता और पलायनवृत्ति का द्योतक है, साहस और धैर्य, सहनशीलता और चारित्रिक दृढ़ता तो इसमें है कि कष्ट सहते हुए भी ऐसा आचरण करें जिससे प्रिय पर लांछन न लगे। मैं यही कर रही हूँ।

विशेष - (i) प्रेम की अनन्यता एवं निष्ठा का सुंदर चित्र है।

(3)

मीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजिये मोहि अमोही।
दीढ़ि कौं और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान बटोही।
हौ घनआनंद जीवनमूल दई कित प्यासनि भारत मोही ॥

सन्दर्भ - पूर्ववत्।

प्रसंग - रीतिकाल के रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रीतिनिधि कवि घनानंद के 'सुजानहित' से उद्धृत इस छंद में कवि ने पति - वियुक्ता नारी के हृदय के हाहाकार और प्रिय की निष्ठुरता का वर्णन किया है।

व्याख्या - हे प्रिय ! मैं हा-हा खाकर कहती हूँ, अत्यंत विनीत होकर भिक्षुक की तरह निवेदन करती हूँ, कि आप निर्मोही न बनें, आप यदि निष्ठुर होकर मेरी उपेक्षा करेंगे तो यह नीति विरुद्ध पाप कर्म होगा। प्रेम करने के उपरांत विश्वासघात करना अनीति ही तो है। मैं आपके प्रति अनन्य भाव से समर्पित हूँ, आपके अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है, आपको छोड़कर मैं किसी अन्य की ओर देखती तक नहीं, मेरे नेत्रों में केवल आप बसे हुए हैं। प्रेम में पागल से नेत्रों का आधार आप ही हैं। यात्री के लिए जैसे लाठी का संबल है, सहारा है और वह उसके सहारे यात्रा पूर्ण करता है, इसी प्रकार मेरी जीवन-यात्रा में आपका विश्वास ही सहारा है। मैं इसी बात पर जी रही हूँ कि आप अपना दिया हुआ वचन पूरा करेंगे, जो आश्वासन दिया है उसे निभाएँगे और मेरा साथ कभी नहीं छोड़ेंगे। यदि आपने अपना वचन नहीं निभाया, विश्वासघात किया और मेरी उपेक्षा की, उसी दिन मेरे ये प्राण शरीर त्याग देंगे, मेरी जीवन-यात्रा समाप्त हो जाएगी। आप

आनंद के बादल हैं। जिससे सदा आनंद की वर्षा होती है, आनंद की वर्षा करना आपका सहज स्वभाव है। आपने अपने प्रेम के जल से मुझे जीवन दिया, आपका प्रेम मेरें लिए संजीवनी बना, अब मुझसे मुँह क्यों मोड़ते हो, मेरे प्रति उदासीनता क्यों अपनाते हो। आपके दर्शनों के अभाव में तो उसी प्रकार मर जाऊँगी जैसे कोई प्यास से तड़प-तड़प कर मर जाता है। मेघ तो जल की वर्षा करता है, बिना भेद-भाव के सबकी प्यास बुझाता है। आप भी आनंद के मेघ हैं फिर यह कठोर और स्वभाव के विपरीत कठोर आचरण क्यों? अपना सहज स्वभाव याद कर मुझे दर्शन दीजिए और मेरे इन तूषित प्राणों की प्यास बुझाकर, मुझे नया जीवन प्रदान कीजिए। प्रेम की रीति का निर्वाह करते हुए, निष्ठुरता त्यागकर, मुझे अपनाइए।

<u>विशेष -</u>

(i) प्रान - बटोही - रूपक अलंकार।

(ii) घन आनंद - श्लेष अलंकार।

<u>सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अजेय' (व्याख्या भाग)</u>

<u>नदी के द्वीप</u>

(1)

हम नदी के द्वीप हैं -
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप उभार, सैकत - कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढी हैं !
माँ है वह इसी से हम बने हैं।
किन्तु हम हैं द्वीप, हम धारा नहीं हैं
स्थिर समर्पण है हमारा हम सदा से
द्वीप हैं स्रोतस्वनी के।

व्याख्या - कवि कहता है कि हम नदी के द्वीप है अर्थात् जीवन जो यह निरन्तर बहती हुई धारा है उसमें हमारी स्थिति द्वीप के समान है। हम यह कदापि नहीं कहते कि नदी की धारा छोड़कर आगे की ओर प्रवाहित हो, आगे बह जाए क्योंकि उसने तो यह रूप दिया, आकार दिया, हमें जन्म दिया। हमारे कोष गलियाँ, टापू, बालू का तट और हमारी सारी गोलाइयाँ उसी के द्वारा निर्मित है उसी ने गढ़ा है। वह हमारी माँ है, उसी ने यह रूप दिया है। अजेय जी कहते हैं कि हम नदी के द्वीप के रूप में हैं हम अपनी माँ समान नदी की धारा का रूप धारण नहीं कर सकते। स्थिर रहकर ही हम नदी के प्रति अपना समर्पण व्यक्त कर सकते हैं। कवि कहता है कि हम द्वीप उसी नदी के हैं उसमें हमारा सम्पूर्ण समर्पण है।

<u>विशेष -</u>

1. अज्ञेय ने प्रतीक का सहयोग लेकर उसके परिवेश में जीवन-धारा का वर्णन किया है। नदी को निरन्तर प्रवाहित होने वाली आगे बढ़ने वाली जीवनधारा तथा ब्रह्म का प्रतीक माना है।
2. जीवन के लिये द्वीप को लेकर मार्मिक व्याख्या की है। जिस प्रकार द्वीप नदी से आकार मिलता है उसी प्रकार जीव ब्रह्म से सजीवता और आकार पाता है।
3. भाषा में प्रतीकात्मकता होते हुए भी भाव बोधगम्यता है दुरूहता नहीं।
4. शैली प्रतीकात्मक और मौलिक है।

(2)

नदी तुम बहती चलो !
भूखण्ड से जो दाय हमकों मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो। यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से, अविचार से,
तुम बढ़ो, प्लवन तुम्हारा घर घराता उठे-
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल प्रवाहिनी बन जाय-
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर फिर छनेंगे हम।
जमेंगे हम कहीं फिर पैर टेकेंगे। वहीं फिर भी खड़ा होगा
नये व्यक्तित्व का आकार। मातः उसे फिर संस्कार देना तुम।

प्रसंग - इस द्वीप का निर्माण नदी ने किया है उसे आकार देने वाली माता नदी ही है। किन्तु यह द्वीप नदी में स्थित रहते हुए भी नदी से अलग है। नदी की धारा तो पानी से निर्मित है किन्तु नदी का द्वीप स्थल अर्थात् भूखण्ड है। नदी में रहते हुए भी वह नदी से अलग है, विलक्षण है। नदी के प्रवाह में वह अपने अस्तित्व की रक्षा कर रहा है। भले ही नदी में बाढ़ आ जाए किन्तु यह द्वीप अन्ततः फिर उसी में उभर आता है उसे पुनः नवीन संस्कार नदी रूपी माता से प्राप्त हो जायेगे।

व्याख्या - हे नदी तुम माँ हो। इस द्वीप को तुमने ही जन्म दिया है। तुम निरन्तर बहती रहो, तुम्हारी गति कभी अवरुद्ध न हो। यह द्वीप नदी में रहते हुए भी नदी से अलग है, क्योंकि वह भूमि का एक खण्ड है। पानी की धारा नहीं है। यदि नदी उसकी माता है, तो भूखण्ड पिता है। पृथ्वी से जो अंश उसे भूखण्ड के रूप में मिला है, उसकी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य है इसलिये वह अपनी व्यष्टि चेतना को सुरक्षित बनाये हुए है। नदी उसकी माता है, जो उसे रूप आकार देती है। उसका संस्कार करती है। द्वीप कहता है कि यदि नदी में किसी कारण से बाढ़ आ जाए जो किसी स्वेच्छाचार, अतिवाद का ही परिणाम हो सकती है तथा यह निर्मल जल धारा वाली नदी कर्मनाशा या कीर्तिनाशा की भाँति प्रबल होकर विकराल एवं विनाशकारी बाढ़ से युक्त हो जाए तो हमें वह स्थिति भी स्वीकार करनी होगी।

विशेष -

1. व्यष्टि चेतना को बनाये रखने का समर्थन कवि ने किया है।
2. नदी को माता तथा भूखण्ड को पिता कहा गया है।
3. मानव व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास है।
4. मुक्ति छन्द खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग।

(3)

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नाया;
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़ के तम में
यह सदा द्रवित, चिर-जागरूक, अनुरक्त नेत्र,
उल्लम्ब बाहु, यह चिर- अखंड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इस को भक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।

सन्दर्भ - पूर्ववत् ।

प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियों में कवि स्वयं का अस्तित्व बोध कराते हुए समाज में दीप की भाँति जागरूक बने रहने की बात कहता है।

व्याख्या-दीप का आधार लेकर कवि अज्ञेय कहते हैं कि मैं उस अटल विश्वास रूप में स्थापित हूँ जिसके अन्त में अपने लघुत्व पर भी कभी न डिगने का भाव समाहित है अर्थात् परिस्थितियों के वशीभूत आई बाधाओं से प्राप्त लघुता में भी में अटल विश्वास को धारण करने वाला हूँ। मैं उस पीड़ा का बोध भी करना जानता हूँ जो मैंने स्वयं भोगी है। अतः समाज की पीड़ा का भी मेरे मन में आत्मबोध है। मैं तो दीप की भाँति अनवरत जलने वाला हूँ चाहे इसके लिए मुझे समाज में कितनी ही कुत्सा (घृणा), अपमान और सामाजिक अवहेलना ही क्यों न झेलना पड़े, मैं कभी भी उनसे नहीं डिगता। अपमान, अवहेलना के गहन अंधकार में मैं सदा द्रवित भावना से ओत-प्रोत रहता हूँ। इन स्थितियों में भी मैं निरन्तर जागरूक रहता हूँ, अपने नेत्रों को समाज के प्रति अनुरक्त रखता हूँ अर्थात् समाज को प्रकाशित करता रहता हूँ, मेरा समाज के प्रति सेवा का भाव बनारहता है। समाज के लिए हाथ बढ़ारहता है। समाज के प्रति मेरा अपनत्व रहता हैं। मेरा भाव एक जिज्ञासु रूप का है, मैं प्रबुद्ध भी हूँ तथा श्रद्धा से आपूरित भी हूँ। इसलिए भक्ति के लिए दीप रूपी मैं प्रस्तुत हूँ। मैं अकेला दीपक ऐसा स्नेहाभिसिक्त हूँ यही कामना है कि अन्य दीपों की भाँति गर्व से भरा मदमस्त दीपक हूँ। मुझे भी समाज कल्याण हितार्थ पंक्ति को समर्पित कर दिया जाये।

विशेष - रस - शान्त, छन्द - अतुकान्त, भाषा - खड़ी बोली,काव्यगुण - प्रसाद, शब्दशक्ति - अभिधा, अलंकार - अनुप्रास ।

महादेवी वर्मा (व्याख्या भाग)

'फिर भी विकल हैं प्राण मेरे'

(1) फिर विकल हैं .... के अरमान मेरे!

सन्दर्भ - प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'सान्ध्यगीत' कृति के 'फिर विकल हैं प्राण मेरे' कविता से ली गयी है।

प्रसंग - इस गीत में बाह्यतः आत्मपरिचय होते हुए भी आत्म प्रकाशन और आत्माभिव्यक्ति की स्वभाव व्यंजक दीप्ति होने के कारण जीवन को घेरकर बृहत्तर वृत्त बनाने वाले साहित्य और अध्यात्म तत्व के अवयव दृष्टिगोचर होते हैं।

व्याख्या - कवयित्री प्राण की सहज वृत्ति जड़ता एवं ससीमता के विरुद्ध चेतना एवं व्यापकता का सफल अभियान एवं परिणाम विजय में मानती है। उनकी चिरन्तन अतृप्त जिज्ञासा परम्परा द्वारा पकड़ाई गई मान्यताओं से तुष्ट होकर शान्त बैठने वाली नहीं है। वह कहती है कि मेरा चैतन्य सत्ता क्षितिज की संकीर्णाकार प्राचीरों के पार का दृश्य देखने को आतुर है। प्राण भौतिक श्वास-प्रश्वास में गण्य जीवनाविधि की विवशता में बंधकर रहने की अपेक्षा आत्मा की शाश्वत सत्ता को मान्यता देता है। आत्मा सागर के समान असीम है उसमें सत्संग में जीवन-मरण की लघूर्मियाँ अनन्त बार बनती- बिगड़ती रहती हैं। भौतिक जीवन का छोटा सा दिया अपने मस्तक पर शाश्वत विद्यमानता का आकाश कैसे धारण किये है, यह निस्संदेह एक विस्मयकारक पहेली जो परोक्षतः नाशवान क्षणों में नाशरहित अनन्तता की ओर संकेत करती है। इन प्राणों ने ही जड़ मृत्तिका के अणु परमाणु'का संगठन करके दृश्य जगत का बिम्ब चेतना के दर्पण पर ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न की, पतंगा अपनी भौतिक क्षणभंगुरता को भूलकर इन्हीं प्राणों की प्रेरणा से दीपक पर अपने प्राणों की आहुति देकर अपनी साधना को उत्सर्गमयी सिद्धि में परिणत करता है। इन्हीं प्राणों की सिहरन आकाश की स्निग्ध रोमांच एवं धरती को अश्रुसिक्त पीड़ा से भर देती है। हे संसार के लोगों तुम्हें प्राणों द्वारा प्रदत्त इन अनुपम वरदानों को मिथ्या घोषित नहीं करना चाहिए। आकाश असंख्य झंझावातों से नगण्यप्राय नक्षत्र दीपों को बुझा न पाया। प्रलय के थपेड़े उन घनघोर मेघों को बार-बार विदीर्ण करके भी उनकी कोमल करुणार्द्र सत्ता को नष्ट करने में असफल ही रहे। फिर भी मेरी आकांक्षायें तो अनादि हैं, उनमें प्रागैतिहासिक काल का सत्य मुद्रित है, इन्हें ही महानाश के भय से मैं असमय में क्यों काल-कवलित होने दूँ।

विशेष -

1. 'नभ डुबा .. क्षुद्र तारे' पंक्ति में मानवीकरण अलंकार है।
2. 'सिन्धु की .... साथ फेरे' उक्ति में प्रतीकात्मकता है।

'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो'

(1) यह मन्दिर .... गले दो !

सन्दर्भ - पूर्ववत्।

प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियों में छायावाद की महान कवयित्री महादेवी वर्मा ने अपने जीवन में व्याप्त विरह को एक दीप रूप में प्रस्तुत करके एकाकी में अनवरत उस अलौकिक प्रिय की वेदना को सहन करते रहने की बात कही है।

व्याख्या - महादेवी अपने जीवन को विरह के दीप के समान मानती हुई कहती हैं यह मेरे मन मंदिर का दीपक है, हे प्रिय तुम्हारी स्मृति में यह अनवरत जले, शांत जले ऐसी भावना मेरे मन में विद्यमान है। जगत् के कोलाहल से दूर इस मन के मंदिर में जब सांसारिक आपाधापी रूपी चाँदी के समान श्वेत शंख और स्वर्णिम घड़ियाल था। वंशी और वीणा आदि के स्वर जब तक बजते हैं तब तक इस दीप को जलना है और जब ये सभी उपादान आरती बेला में कोलाहल करके शांत हो जाते हैं तब भी मेरा विरह रूपी दीपक इस मन मंदिर में अनवरत जलता रहता है। जब कलरव करती ध्वनियाँ मेरे जीवन में थी तब तो मेरे मानसरूपी मेघ बरसते थे अब तो मेरा जीवन एकाकी हो गया है अब मैं दीपक की भाँति अपने मन मंदिर में अकेली बैठी हूँ, साथ में कोई है तो वह मेरा ईश्वररूपी प्रियतम ही मेरी भावनाओं में समाया हुआ है। अपने अलौकिक प्रिय की उपस्थिति में मैं अपने जीवन को निरन्तर गला देना चाहती हूँ,हे प्रिय मेरी यह कामना है कि मैं तुममें अपने को न्योछावर कर दूँ, अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूँ।

<u>विशेष -</u>

- **रस** - शान्त
- **छन्द** - गीत
- **भाषा** - खड़ी बोली
- **शब्द शक्ति** - व्यंजना
- **काव्यगुण** - माधुर्य।

<u>तुलनीय</u> - महादेवी वर्मा का विरह इसी प्रकार अन्य गीत में भी व्यक्त हुआ है -

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल।

(2) पल के...........ढलने दो !

सन्दर्भ - पूर्ववत् ।

प्रसंग - महादेवी वर्मा इन पंक्तियों में प्रिय विरह में जड़वत हुई स्थिति का चित्रांकन करती हुई पुनः प्राणों को जीवन्त करने की कामना करती हैं।

व्याख्या - महादेवी अपनी विरह वेदना की अभिव्यक्ति

अपने उस अलौकिक प्रिय के प्रति करते-करते कहती हैं। मन की पलकों को बन्द करके विश्व का दृश्यमान पुजारी अब सो गया है, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् उन गतिविधियों को समाप्त करके शांत हो गया है, मन में उठी हुई प्रतिध्वनि भी अब काल के गाल में समाहित हो चुकी है। महादेवी अपने जीवन को जड़वत बताती हुई कहती हैं अब तो प्रिय के वियोग में जीवन की साँसें भी समाधिस्त हो गयी हैं, यह जीवन-मार्ग स्याह समुद्र की भाँति अति अंधकारमय हो गया है। जीवन में सर्वत्र निराशा व्याप्त है, आशा के संचार का कोई उपाय अब दिखायी नहीं देता है। अब तो आत्मान्दोलन करने वाला चेतन जगत् का कण-कण शांत हो गया है, अर्थात् मानस के अन्त में उठी स्पंदन की भावना भी अब सुप्त हो गयी है।

अब शेष है तो केवल यह जीवन दीप जो अनवरत् जल रहा है, इस प्राणों की जलती ज्वाला में अपने प्रिय से कवयित्री एक बार फिर प्राणों के संचार की कामना करती है। अर्थात् अपने प्रिय के प्रति पुकार लगाती है।

विशेष - रस - शान्त, छन्द - गीत, भाषा -खड़ी बोली, काव्यगुण माधुर्य, शब्द शक्ति लक्षणा, उपमा 'साँसों की समाधि सा जीवन में, रूपक - 'मसि सागर का पंथ वन गया' में।

सुमित्रानन्दन पन्त (व्याख्या भाग)

मौन निमंत्रण

(1)

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन।

सन्दर्भ एवं प्रसंग - यह पद्यांश सुमित्रानन्दन पन्त की प्रसिद्ध एवं रहस्यमयी रचना "मौन निमन्त्रण" से लिया गया है। पन्त जी प्रकृति की हलचल को असीम एवं सर्वव्यापक ईश्वर का संकेत मानते हुए लिखते हैं।

व्याख्या - संसार के लोग जब शान्त चाँदनी में भोलेभाले बालक के समान आश्चर्यचकित हो जाते हैं। संसार की कोमल पलकों पर जब रात के समय लोगों के बिना जाने ही स्वप्न विचरण करने लगते हैं, उस समय न जाने कौन मुझे नक्षत्रों के द्वारा चुपचाप निमन्त्रण देता है अर्थात् अपने पास बुलाता है।

विशेष -

1. **अलंकार** - स्तब्ध संसार, शिशु सा, पलकों पर न नक्षत्रों मुझकों-मौन में अनुप्रास, चकित रहता शिशु सा नादान में उपमा न जाने नक्षत्रों से कौन में सन्देह तथा प्रश्न अलंकार है।
2. स्वप्नों का मानवीकरण किया गया है।
3. संस्कृत तत्सम प्रधान सरल सरस खड़ी बोली में रहस्यवादी भाव प्रकट किया गया है।

(2)

"सघन मेघों का भीमाकार
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर नि:श्वास
प्रखर झरती जब पावस धार
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !"

प्रसंग - पूर्ववत्।

व्याख्या - जब घने बादलों से घिरा हुआ आकाश भयानक गरजना करता है और आकाश में घिरी हुई घटाएँ गर्जन करती है। एवं सब कुछ अँधेरे में डूब जाता है। पवन इस प्रकार चलती हैं, मानों लम्बी-लम्बी गरम साँसे ले रही हो। उस समय जब वर्षा की तेज धार आकाश से धरती पर गिरती है, तब न जाने बिजली के रूप में तड़पकर कौन मुझे चुपचाप अपनी ओर बुलाता है। तात्पर्य यह है कि बिजली की चमक उसी निराकार एवं सर्वव्यापी ईश्वर का निमन्त्रण है।

विशेष -

1. बादलों का भयानक गर्जन, चारों ओर फैला हुआ अंधकार एवं उसमें तड़पती हुई बिजली - ये सभी भयानक वातावरण की सृष्टि करते हैं।
2. सरल, सरस एवं संस्कृत तत्सम प्रधान रही खड़ी बोली में प्रेम की रहस्यमयी भावना व्यक्त की गयी है।

यह धरती कितना देती है

(1)

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे खोये थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और, फूल-फल कर मैं मोटा सेठ बनूँगा !
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बन्ध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला!
सपने जाने कहाँ मिटे सब धूल हो गये!

सन्दर्भ - प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की कविता 'यह धरती कितना देती है' से ली गई हैं।

प्रसंग - इन पंक्तियों में कवि ने बालोचित स्वभाव पर प्रकाश डाला है। किस प्रकार बच्चा कल्पना करता है, उसको क्रियान्वित करता है, और तदन्तर असफल होने पर वह ऐसी कल्पनाओं से मुँह मोड़ लेता है।

व्याख्या - कवि अपने बाल जीवन को याद करते हुए कहता है, कि मैंने बचपन में लोगों की निगाहों से बचकर सिक्कों का वपन किया था और सोचा था कि ये सिक्के अंकुरित होंगे, इनसे प्यारे-प्यारे पेड़ उगेंगे, इन पेड़ों की शाखाओं में सिक्के फलेंगे और ये सुन्दर सिक्के हवा के झोंके के प्रभाव में आकर खनका करेंगे। रुपये की ये फसल मुझे एक मोटा सेठ बना देंगी, लेकिन कवि की कल्पना साकार नहीं हुई। एक भी सिक्का अंकुरित नहीं हुआ। बोये गए सिक्कों के बदले में धरती ने एक भी सिक्का नहीं दिया। परिणामतः सपनों पर तुषारापात हो गया। सारे सपने धूल-धूसरित हो गए। यद्यपि इसके बाद भी मैं निरन्तर इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि देरसबेरे कभी-न-कभी ये रुपये अंकुरित होंगे। मेरी बाल कल्पना इस बात को मानने को तैयार ही नहीं थी कि सिक्कें अंकुरित नहीं होंगे मैंने एकटक अंकुरण की प्रतीक्षा की, लेकिन ऐसा नहीं हुआ, वस्तुतः इस अनुकरण का कारण यह था कि मैंने अज्ञानतावश लोभ और मोह के वशीभूत होकर इन बीजों का वपन किया था।

विशेष -

(i) कवि यहाँ लक्षणा के माध्यम से यह अभिव्यंजित करना चाहता है, कि लोभ और मोह के वशीभूत होकर किये कार्य फलीभूत नहीं होते।
(ii) बाल मनोविज्ञान का जीवंत चित्रण किया गया है।
(iii) मुहावरेदार, सरल एवं सर्वग्राह्य भाषा का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

(2)

मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन!
किन्तु, एक दिन, जब में सन्ध्या को आँगन में
टहल रहा था, तब सहसा मैंने जो देखा,

उससे हर्ष - विमूढ़ हो उठा में विस्मय से !
देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी-छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं।
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्हीं, प्यारी,
जो भी हो, वे हरे-हरे उल्लास से भरे
पंख मारकर उड़ने को उत्सुक लगते थे,
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों-से! निर्निमेष,
क्षण भर में उनको रहा देखता,
सहसा मुझे स्मरण हो आया, कुछ दिन पहले,
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में.
और उन्हीं से बौने पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से,
नन्हें नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है।

सन्दर्भ - पूर्ववत् ।

प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पावस ऋतु के बाद आँगन के कोने में बोये गये सेम के बीजों के अंकुरण तथा उनके विकास का आलंकारिक वर्णन किया है।

व्याख्या- मैं इस बात को भूल गया था, कि मैंने कभी कुछ बोया था। इसका कारण था, कि यह एक सामान्य सी घटना थी और इसे याद रखने का कोई औचित्य नहीं बनता था। लेकिन एक दिन जब मैं सायंकाल आँगन में टहल रहा था, तब अचानक मेरी दृष्टि सेम के इन अंकुरों पर पड़ी। मैं इतना आश्चर्यचकित हुआ कि मेरे अंतःकरण में प्रसन्नता और विमूढ़ता के मिश्रित भाव संचारित होने लगे। मैंने देखा कि आँगन के कोने में कई नवागंतुक पधार चुके हैं। ये अपने सिर पर शरीर के अनुपात में ही छतरियाँ ताने हुए हैं। कवि इनको देखकर भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करता है। कभी वह इन छतरियों को नवागंतुक पौधों की विजय पताकाएँ कहता है, तो कभी उनकी तुलना नन्हीं नन्हीं प्यारी-प्यारी हथेलियाँ खोले छोटे-छोटे बच्चों से करता है। कवि पुनः कहता है, कि जो भी हो ये नन्हें पौधे हैं अतिशय सुन्दर। कभी-कभी ये हरे- भरे पौधे अत्यंत उल्लामित दृष्टिगत होते हैं। लगता है, ये अण्डे के खोल से बाहर आये चिड़ियों के बच्चे हों और पंख फैलाकर उड़ने के लिए उत्सुक हों।

कवि इस नयनाभिराम दृश्य को अपलक, क्षण भर देखता रहा. सहसा उसे स्मरण हो आया कि कुछ दिन पहले मैंने ही तो आँगन के कोने में पावस ऋतु के बाद सेम के बीजों का वपन किया था। आज वही बीज अंकुरित होकर इस दशा को प्राप्त हुए हैं। ये बौने पौधे किसी फौजी पलटन की तरह मेरे समक्ष खड़े हैं- गर्वोन्नत । इन फौजियों के पैर भी छोटे-छोटे हैं। इसको देखने के बाद लगता है,कि ये कदमताल करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

विशेष –

(i) प्रस्तुत पंक्तियों में कवि का प्रकृति प्रेम दृष्टव्य है। वह सेम के नवजात पौधों को विविध रूपों में देखता है। यह उसकी कल्पनाशीलता की पराकाष्ठा का द्योतक है।

(ii) सेम के पौधे को विभिन्न रूपों में मानवीकृत किया गया है। इसलिए यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

(iii) भाषा सरल एवं सुग्राह्य है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (व्याख्या भाग)

वर दे वीणा वादिनी वर दे

वर दे, वीणा वादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र - रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे!
काट अंध उर के बंधन स्तर
बध जनांनि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद तम - हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे !

सन्दर्भ - प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित 'वर वीणा वादिनी वर दे' कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग - इस पद्यांश में कवि माँ सरस्वती की वंदना करता है, और उनसे प्रार्थना करता है कि वे भारतवासियों को ज्ञान और स्वतन्त्रता प्रदान करें।

व्याख्या - कवि देवी माँ सरस्वती से वंदना करता हुआ कहता है कि हे माँ सरस्वती ! मैं आपसे बार-बार यह वरदान माँगता हूँ कि आप मेरे देश भारतवर्ष में अमृत के समान स्वतन्त्रता का स्वर और मंत्र व्याप्त कर दें। भाव यह है कि मैं यह चाहता हूँ कि भारतवासियों की स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो। हे माँ! तुम भारतवासियों में अंधकाररूपी अज्ञान से युक्त हृदयों में प्रकाश रूपी ज्ञान की धारा को प्रवाहित करो जिससे कि चारों ओर प्रकाश का झरना प्रवाहित होने लगे। हे माँ! तुम भारतवासियों के पापों को दूर करो। उनके अज्ञान को नष्ट करके, उनके जीवन में ज्ञान की रोशनी यह फैलाओ ताकि सम्पूर्ण भारतवर्ष ज्ञान रूपी प्रकाश से जगमगा उठे।

विशेष-

(i) यहाँ कवि ने मंगलाचरण के रूप में देवी सरस्वती की आराधना की है और अपनी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त किया है।
(ii) कवि भारतवासियों के मन में व्याप्त अज्ञान और पाप की कलुषता को दूर करना चाहता है।
(iii) अनुप्रास, पद मैत्री, श्लेष, रूपकातिश्योक्ति आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
(iv) गीतिकाव्य की सभी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।

वह तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़ पर वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा बंधन
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन।
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार,
सामने तरू मालिका, अट्टालिका, प्राकार।

सन्दर्भ - प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारे पाठ्यपुस्तक में संकलित कविता 'वह तोड़ती पत्थर' से अवतरित हैं। इसके रचयिता प्रसिद्ध छायावादी एवं प्रगतिवादी कवि श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी हैं। मूलतः यह कविता उनके काव्यसंग्रह 'अनामिका' में संकलित है।

प्रसंग - इस कविता में उन्होंने इलाहाबाद में सड़क के किनारे बैठकर पत्थर ताड़ने वाली नारी (श्रम जीवनी) का यथार्थ चित्रण किया है।

व्याख्या - निराला जी कहते हैं कि दिन भर मजदूरी करने वाली वह स्त्री पत्थर तोड़ रही थी। उन्होंने इलाहाबाद के एक मार्ग पर उसे पत्थर तोड़ते देखा था। वह मजदूर नारी सड़क पर प्रचंड धूप में पत्थर तोड़ रही थी। वहाँ पर कोई छायादार पेड़ भी नहीं था, जिसकी छाया में बैठकर वह गर्मी को दूर कर लेती। उसका शरीर कृष्ण-वर्ण का (साँवला) था, वह भरी-पूरी जवानी की उम्र में थी, उसकी आँखें झुकी थीं और उसका मन अपने काम में लगा था। उसके हाथ में भारी हथौड़ा था, जिससे वह पत्थरों पर बार-बार चोट करती थी। उसके सामने पेड़ों की पंक्ति, ऊँचे भवन तथा उनकी चहारदीवारी थी।

विशेष -

(i) 'सामने तरु मालिका, अट्टालिका, प्राकार इस पंक्ति में पूँजीवादियों की सम्पन्नता का पता चलता है।

(ii) भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ीबोली है।

(iii) 'हथौड़ा हाथ', 'बार-बार प्रहार' तथा 'मालिकाअट्टालिका' में अनुप्रास अलंकार है। 'बार- बार में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का टमटमाता रूप
उठी झुलसाती लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गयीं,
प्रायः हुईदुपहर,
वह तोड़ती पत्थर !

सन्दर्भ - पूर्ववत्।

प्रसंग - निराला जी ने प्रस्तुत पंक्तियों में तेज धूप से उत्पन्न वातावरण का चित्रण किया है।

व्याख्या - निराला जी कहते हैं कि गर्मी के दिन थे। धूप अपनी तेजी पकड़ रही थी। तेज धूप से दिन का तापमान बढ़ गया था। शरीर को झुलसाती, मुरझाती लू चलने लगी थी। पृथ्वी ऐसे जल रही थी, जैसे रुई जलती है अर्थात् प्रचंड धूप और झुलसाती लू का प्रभाव पृथ्वी पर तत्काल पड़ रहा था। धूल के कण वातावरण में चिंगारियाँ बनकर छा गए थे। लगभग दोपहर का समय था, जब वह पत्थर तोड़ रही थी।

विशेष –

(i) आलंबन तथा उद्दीपन के रूप में गर्मी की धूप का चित्रात्मक वर्णन करने में निराला जी सफल हुए हैं।

(ii)तत्सम् और तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(iii) भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ीबोली है।

(iv) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

Toppers Notes
Unleash the topper in you

भवानी प्रसाद मिश्र (व्याख्या भाग)

गीत-फ़रोश

(1)

जी, माल देखिये दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा;
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने;
यह गीत सख्त सरदर्द भुलायेगा;
यह गीत पिया को पास बुलायेगा।

सन्दर्भ - प्रस्तुत पद्यांश भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा रचित कविता गीत-फरोश से अवतरित है।

प्रसंग - इस कविता के इस अंश में प्रयोगवादी कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने आपको फेरी लगा-लगाकर गीत बेचने वाले के रूप में प्रस्तुत करते हुए आज की दूषित रचनाधर्मिता और उन कवियों- पर करारा व्यंग्य प्रकार किया है, जिन्होंने साहित्य को सौदेबाजी का विषय बना दिया है।

व्याख्या - फेरी लगाते हुए कवि अपने ग्राहक से कहता है - जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ। मेरे पास तरह-तरह के अर्थात् हर प्रकार के गीत हैं। एक कुशल बनिये की मुद्रा में वह कहता है - पहले आप भली-भाँति माल देख लें, बाद में उसका उपयुक्त दाम मैं बता दूँगा। इनमें से कोई भी गीत बिना मतलब का नहीं है। कौन-सा गीत किस उपयोग का है, यह मैं समझा दूँगा। इन बानगी में गीतों की रचना भिन्न- भिन्न परिस्थितियों में की गयी है। कुछ गीत मस्ती के क्षणों में लिखे गये हैं तो कुछ गीतों की रचना थके- हारे क्षणों में हुई है। देखिए, यह गीत ऐसा है जो आपके जोरदार सिरदर्द को भुला देगा। एक गीत ऐसा भी है जो प्रियतमा को आपके पास खींच लायेगा।

काव्य-सौन्दर्य

(i) इस पद्यांश में बोलचाल की भाषा और वार्तालाप की शैली में अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादक बन गयी है।
(ii) भाषा का व्यावहारिक रूप अभिव्यक्त है।

(2)

जी, और गीत भी हैं दिखलाता हूँ,
जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ।
जी, छंद और बेछंद पसंद करें,
जी, अमर गीत और वे जो तुरत मरें !
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं ले आता हूँ, क़लम और दावात,

सन्दर्भ - पूर्ववत्।

प्रसङ्ग - इन पंक्तियों में कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने गीत विक्रेता की हैसियत से अपनी काव्य प्रतिभा तथा कविकर्म के व्यवसायीकरण पर व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण दिया है।

व्याख्या - कवि गीत बेचने वाला बनकर अपने गीतों की विशेषता बताता हुआ कहता है कि अभी मैंने आपको अनेक गीत दिखाए यदि उनमें से कोई आपको पसन्द नहीं आया तो कोई बात नहीं मेरे पास और भी गीत हैं, मैं आपको उन गीतों को दिखला रहा हूँ, यदि आप

उन गीतों को सुनना चाहें तो मैं उन्हें गाकर सुना दूँगा। यदि छन्द वाले गीत चाहिए तो छन्द वाले मिलेंगे, बिना छन्द के गीत भी मेरे पास हैं यदि आप बेछन्द गीत पसन्द करें तो वैसा भी गीत मेरे पास हैं। कवि अपने गीतों के भण्डार में समाज द्वारा गीत पसन्द न आने पर कहता है कि यदि आपको मेरे इन विविध गीत भण्डार में से कोई गीत नहीं भाया तो भी आप बुरा न माने मैं कलम दवात लेकर अपकी पसन्द का गीत लिख देता हूँ।

विशेष-

- **रस**- शान्त
- **छन्द** - गेय
- **भाषा** - खड़ी बोली
- **काव्यगुण** - प्रसाद
- **शब्दशक्ति**- अभिधा।

(3)

जी, गीत जनम का लिखूँ, मरण का लिखूँ,
जी, गीत जीत का लिखूँ, शरण का लिखूँ
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का !
कुछ और डिजाइन भी हैं, यह इल्मी,
यह लीजे चलती चीज़, नयी फिल्मी
यह सोच-सोचकर मर जाने का गीत !
यह दुकान से घर जाने का गीत !
जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात,
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात
तो तरह-तरह के बन जाते हैं गीत,
जी, रूठ-रूठकर मन जाते हैं, गीत,
जी, बहुत देर लग गया, हटाता हूँ,
ग्राहक की मर्जी अच्छा जाता हूँ
मैं बिल्कुल अन्तिम और दिखाता हूँ,
या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप,
क्या करूं मगर लाचार
हारकर गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ।
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ

सन्दर्भ - पूर्ववत्।

प्रसङ्ग - प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में कवि ने समाज में अपनी लाचारी की स्थिति में अपने गीतों को बेचने की दशा का वर्णन किया है। समाज के आत्म-रंजन के लिए कवि विभिन्न प्रकार के गीत लिखने का कार्य करता है।

व्याख्या - कवि भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं कि आप कहें तो मैं जन्म के गीत लिख दूँ। मैं जन्म का गीत भी लिखता हूँ। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों सभ्यताओं पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है यह मेरा गीत रेशमी अर्थात् पाश्चात्य आवरण का है और यह दूसरा गीत भारतीय परम्परा खादी से सम्बन्धित है। एक गीत पित्त का और एक अन्य बात का है। यहाँ कवि समाज के स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट कर रहा है। कवि कहता है इसके अतिरिक्त मेरे पास गीतों के कुछ और भी नमूने हैं। इनमें कुछ नये हुनर के हैं वर्तमान परिदृश्य में चलने वाले फिल्मी गीत भी हैं। एक ऐसा गीत हैं जो समाज में अपनी दशा पर विचार करके मर जाने के लिए लिखा है तो एक गीत ऐसा भी है जो दुकान से घर जाने की ओर संकेत करता है। मैं आपसे मजाक नहीं करता मैं तो दिनरात गीत ही लिखा करता हूँ। मेरे दिन-रात के गीत लेखन के कारण तरह-तरह के गीत बन जाते हैं। मेरे गीत भी मुझसे कभी रूठ जाते हैं तो कभी मन जाते हैं। मेरे गीतों का मेरे पास भंडार लग गया है, बहुत से गीतों को मैंने हटा दिया है, कुछ को हटा रहा हूँ ग्राहक की मर्जी है कि वे मेरे गीत खरीदें, वैसे मैं अपने गीत बेचता हुआ जाता हूँ। यदि आपको गीत चयन में कोई कठिनाई हो रही है तो कृपया घर के भीतर से अच्छे गीत खरीदने

ToppersNotes Unleash the topper in you

के लिए पूछकर आइये वैसे गीत खरीद-फरोख्त में गीत बेचना का काम महापाप है, क्योंकि इस प्रकार का कार्य सफल नहीं होता। किन्तु अपनी आर्थिक स्थिति से विपन्न कवि अपनी लाचारी इस कविता में व्यक्त करता है और कहता है विवशता के कारण थक-हारकर मैं गीत बेच रहा हूँ। हुजूर मैं भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत बेच रहा हूँ।

विशेष - रस - शान्त, छन्द - गेय, भाषा - खड़ी बोली, काव्यगुण - प्रसाद, शब्द शक्ति - अभिधा, अलंकार मानवीकरण।

विद्यापति (व्याख्या भाग)

(1) राधा की वंदना

देख देख राधा रूप अपार।
अपुरूष के बिहि आनि मिलाओल खिटि तल लावनि-सार ॥ 2 ॥
अंगहि-अंग अनंग मुरछावत हेरय पड़ए अधीर।
मनमय कोटि-मंथन करू ने जन से हेरि गहि-मधि गीर ॥ 4 ॥
फट कट लखिमी चरन-टल नेओछए रंगिनि हेरि बिभोरि।
करू अभिलाख मनहि पदपंकज अहोनिसि कोर अगोरि ॥ 6 ॥

सन्दर्भ - प्रस्तुत पंक्तियाँ आचार्य राम लोचन शरण द्वारा सम्पादित मैथिली कवि विद्यापति की पदावली' में संकलित वंदना खण्ड के अन्तर्गत राधा की वंदना से उद्धृत हैं।

प्रसंग - इस पद्य में कवि विद्यापति ने राधा के अनुपम सौंदर्य का चित्रण किया है।

व्याख्या - कवि राधा के अनुपम सौन्दर्य की ओर संकेत करके कहते हैं देखो, देखो। राधा के अनुपम सौंदर्य की ओर देखो। राधा के सौन्दर्य को देखकर लगता है मानो विधाता ने इस पृथ्वी पर विद्यमान सारे सौन्दर्य तत्वों को लेकर अथवा एकत्र करके मिला दिया है। उसके शारीरिक सौन्दर्य अथवा उसके एक-एक अंग के सौन्दर्य को देखकर कामदेव भी अधीर होकर मूर्छित हो जाता है। राधा के अनुपम सौन्दर्य को देखकर सौन्दर्य का देवता कामदेव भी व्याकुल हो उठता है। भले ही श्री कृष्ण अपनी सुन्दरता से करोड़ों कामदेव को लज्जित करने में सक्षम हैं, परन्तु वे भी राधा के अनुपम सौन्दर्य को देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

विशेष-

(i) इस छंद में कवि ने राधा के सौंदर्य का चित्रण अपनी कल्पना के बल पर किया है।
(ii) अंग-अनंग में रूपक अलंकार है।
(iii) पूरे पद में श्रृंगार रस है।
(iv) अभिधा और व्यंजना शब्द शक्ति हैं।
(v) मधु मैथिली भाषा का प्रयोग हुआ है।

(2) श्री कृष्ण प्रेम (35)

जहाँ जहाँ पग-जुग धरई। तहिं तहिं सरोरूह झरई ॥ 2 ॥
जहाँ जहाँ झलकत अंग। तहिं तहिं बिजुरि तरंग ॥ 4 ॥
कि हेरल अपरूब गोरि। पइठल हिय मधि मोरि ॥ 6 ॥
जहाँ जहाँ नयन बिकास। तहिं तहिं कमल प्रकाश ॥ 8 ॥
जहाँ लहु हास सँचार। तहिं तहिं अमिय बिकार ॥ 10 ॥

सन्दर्भ - प्रस्तुत पंक्तियाँ आचार्य राम शिरोमणि शरण द्वारा सम्पादित मैथिली कवि 'विद्यापति की पदावली' में संकलित प्रेम प्रसंग खंड के प्रथम भाग श्री कृष्ण प्रेम से उद्धृत हैं।

प्रसंग - इस पद में कवि विद्यापति ने नायक-नायिका अर्थात् श्रीकृष्ण व राधा के प्रेम का चित्रण किया है।

व्याख्या - वह जहाँ जहाँ पर अपने दोनों चरण रखती है, वहाँ वहाँ पर कमल झड़ते हैं। वस्त्रादि के मध्य में जहाँ- जहाँ से उसके अंग दिखाई देते हैं वहाँ वहाँ से बिजली की चमक सी कौंध जाती है। मैंने उस अद्वितीय सौंदर्य वाली रमणी को क्या देखा, वह तो मेरे हृदय में प्रवेश कर गयी अर्थात मेरे हृदय में उसकी छवि अंकित हो गई। उसके नेत्रों की ज्योति जहाँ जहाँ पर जाती है। अर्थात् वह जहाँ जहाँ देखती है वहाँ वहाँ पर कमल का प्रकाश फैल जाता है जहाँ भी वह मुस्कुराने लगती है वहीं पर अमृत का संचार होने लगता है। वह जहाँ जहाँ पर अपने वक्र नेत्रों से कटाक्ष करती है, वहाँ वहाँ पर कामदेव के लाखों बाण चल जाते हैं। यद्यपि मैंने उस सुंदरी को थोड़े समय के लिए देखा था, परन्तु अब तो वह मुझे तीनों लोकों में व्याप्त दिखाई देती है। अब तो केवल पुण्य कर्मों से ही उसके दोबारा दर्शन हो सकते हैं और उसके दर्शन होने के पश्चात ही मेरा यह दुःख जाएगा अर्थात नष्ट होगा। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण ही उसे तुम्हारे पास लाकर देंगे। कहने का भाव यह है, कि वह श्रीकृष्ण के गुणों से प्रभावित होकर स्वयं उनके पास चली आएंगी।

विशेष-

(i) कवि ने राधा सौंदर्य जनित श्री कृष्ण के प्रेम का चित्रण किया है।

(ii) पूरे पद में गेयात्मकता एवं संगीतात्मकता है।

(iii) माधुर्य गुण का प्रयोग सफल है।

(iv) सम्पूर्ण पद में अत्युक्ति अलंकार है।

(v) तत्सम पदावली की प्रधानता है।

(3) राधा प्रेम (36)

ए सिख पेखलि एक अपरूप।
सुनइत मानबि सपन- सरूप ॥ 2 ॥
कमल जुगल पर चाँद की माला।
तापर उपजल तरून तमाला ॥ 4 ॥
तापर बेढ़लि बिजुरी - लता।
कालिंदी तट धीरे चलि जाता ॥ 6 ॥
साखा - सिखर सुधाकर पाँति।
ताहिं नव पल्लव अरूनक भाँति ॥ 8 ॥
बिमल बिम्बफल जुगल बिकास।
तापर कीर थीर करू बास ॥ 10 ॥
तापर चंचल खंजन- जोर।
तापर साँपिनि झाँपल मोर ॥ 12 ॥
ए सखि - रंगिनि कहल निसान।
हेरइत पुनि मोर हरल गिआन ॥ 14 ॥
कवि विद्यापति एह रस भान।
सुपुरूढा मरम तुहू भल जान।। 16 ।।

सन्दर्भ - प्रस्तुत पद्य आचार्य रामशिरोमणि शरण द्वारा सम्पादित मैथिली कवि 'विद्यापति की पदावली' में संकलित प्रेम प्रसंग खंड के द्वितीय भाग राधा प्रेम से उधृत है।

प्रसंग - कवि विद्यापति ने नायक-नायिका अर्थात् श्री कृष्ण व राधा के प्रेम का चित्रण किया है। राधा अपनी सखी के सामने श्री कृष्ण के अपार सौंदर्य का वर्णन करती हुई कहती हैं।

व्याख्या - हे सखी! आज मैंने अद्वितीय सौंदर्य को देखा। यदि तुम सुनोगी तो कहोगी कि यह तो तुम्हारा स्वप्न में देखा हुआ रूप है। कहने का भाव यह है कि ऐसे अद्वितीय सौंदर्य पर तुम विश्वास नहीं करोगी। मैंने दो कमलों के ऊपर चन्द्रमाओं की माला देखी अर्थात् श्री कृष्ण के दोनों चरण कमल के समान दिखाई दे रहे थे और उनके पैरों के नाखून चन्द्रमा के समान दिखाई दे रहे थे। उनके ऊपर एक